(२६) तीर्थंकर का स्व-चक्र भी उपद्रव नहीं करता।
(२७) तीर्थंकर के यहां अतिवृष्टि नहीं होती।
(२८) तीर्थंकर के यहां अनावृष्टि नहीं होती।
(२९) तीर्थंकर के क्षेत्र में अकाल नहीं पड़ता।
(३०) तीर्थंकर यहां विराजते हैं वहां सारे पूर्वोत्पन्न उपद्रव शान्त हो जाते हैं।

तीर्थंकर का बल

तीर्थंकर में जहां आत्म-बल होता है वहां शारीरिक बल भी किसी अन्य में उनके समान न पहले था, न है और न आगे होगा। आचार्यों ने उनके शारीरिक बल का इस प्रकार उदाहरण दिया है-

२,000 शेरों का बल	= १ अष्टापद (विविहार जाति के शेर में)
१0,00,000 अष्टापदों का बल	= १ बलदेव में
२ बलदेवों का बल	= १ वासुदेव में
२ वासुदेवों का बल	= १ चक्रवर्ती में
१,00,00,000 चक्रवर्तियों का बल	= १ इन्द्र में

ऐसे अनन्त इन्द्र मिलकर भी प्रभु की छोटी अंगुली को मिलकर भी नुकसान पहुंचाना चाहें, तो वह उस छोटी अंगुली को झुका नहीं सकते। कहने का तात्पर्य है कि उनके पुण्य प्रताप के कारण वे अनन्त बलशाली होते हैं।

भाषा के पेंतीस गुण

(१) तीर्थंकर का उपदेश संस्कार-सम्पन्न होता है।
(२) उनका उपदेश एक योजन तक सुनाई देता है।
(३) वे तू जैसे अपशब्द प्रयोग नहीं करते।
(४) मेघ की तरह गम्भीर होता है।
(५) उपदेश तीन लोकों में गुंजायमान होता है।
(६) उनकी वाणी धृत की तरह स्निग्ध व शहद से ज्यादा मीठी होती है।
(७) उनके वचन से ६२ राग व ३० रागिनियां उत्पन्न होती हैं, जिन्हें सुनते ही श्रोता प्रसन्नता अनुभव करते हैं।
(८) वह शब्द कम और विशाल अर्थ वाला प्रवचन करते हैं।
(९) वह हठरहित उपदेश देते हैं।
(१०) उनका बिना रुकावट के उपदेश चलता रहता है।
(११) उनका स्पष्ट व शंकारहित उपदेश होता है।
(१२) श्रोता एक मन होता जाता है।
(१३) वह देश व स्थिति अनुकूल होता है।
(१४) वह व्यर्थ बातों से दूर, अर्थ भरपूर होता है।
(१५) वह जीव-अजीव आदि ९ तत्वों का विवेचन करते हैं।
(१६) वह सांसारिक कार्यों का वर्णन संक्षिप्त भाषा में करते हैं।

(१७) उनका उपदेश बच्चा भी समझ लेता है।
(१८) उनका उपदेश स्व-प्रशंसा व पर-निन्दारहित होता है।
(१९) उनका उपदेश दूध और मिश्री की तरह मीठा-मीठा होता है।
(२०) उनका उपदेश गुप्त रहस्य प्रकट न करने वाला होता है।
(२१) वह खुशामदरहित उपदेश देते हैं।
(२२) वह जन-कल्याण व आत्म-कल्याणकारी उपदेश देते हैं।
(२३) उनका उपदेश आत्मा को आहत् नहीं करता।
(२४) वह भाषा का विशुद्ध उपयोग करते हैं।
(२५) वह न धीमा न उच्च बल्कि मध्यम स्वर में उपदेश देते हैं।
(२६) उनके प्रवचनों में श्रोता धन्य धन्य कह उठते हैं।
(२७) वह चित्र की भांति वस्तु का स्वरूप स्पष्ट समझाते हैं।
(२८) वह विश्रामरहित प्रवचन करते हैं।
(२९) जो भी प्रवचन सुनता है उसका संशय बिना पूछे दूर हो जाता है।
(३०) उनके उपदेश सुनने वाले उनके वाक्य को हृदय में बसा लेते हैं।
(३१) उनका उपदेश हर पक्ष से सही होता है।
(३२) उनके उपदेश प्रभावशाली व तेजस्वी होते हैं।
(३३) वह दृढ़तापूर्ण उपदेश देते हैं।
(३४) थकावटरहित उपदेश होता है। वह प्रवचनों में कभी नहीं थकते व न ही सुनने वाला थकता है।
(३५) उनती वाणी विवक्षित अर्थ की सम्यक् सिद्धि तक अविच्छिन्न अर्थ वाली हो।

तीर्थंकरों की भाषा में इतने गुण होते हैं कि जो भी उनके समवसरण में आता है वह कुछ पाकर जाता है। उनका उपदेश बेकार नहीं जाता। प्रत्येक श्रोता व्रत ग्रहण करता है।

अन्य गुण :

(१) अनन्त ज्ञान, (२) अनन्त दर्शन, (३) अनन्त चारित्र, (४) अनन्त बल, (५) अनन्त वीर्य, (६) अनन्त क्षायिक समकित, (७) वज्रऋषभनाराच संहनन, (८) समचतुरस्रस्थान, (९) ३४ अतिशय (ऊपर वर्णन हो चुका है), (१०) वाणी के ३५ गुण (वर्णन हो चुका है), (११) १००८ शरीर के लक्षण, (१२) ६४ इन्द्रों द्वारा पूजित।

इसके अतिरिक्त संसार की सभी श्रेष्ठ शक्तियों के वे स्वामी त्रैलोक्य चक्रवर्ती होते हैं।

हमने यहां तीर्थंकरों के बारे में वही बातें बताई हैं जो जैनधर्म की प्राचीन मान्यताओं पर आधारित है, यह जैन आस्था (सम्यकत्व) के आधार हैं। इसी कारण जैन तीर्थंकर साकार परमात्मा या वीतराग के रूप में श्रद्धा के केन्द्र हैं।

तीर्थंकर परमात्मा १८ दोषों से रहित होते हैं। वे राग-द्वेष के बन्धनों को तोड़ कर्म जंजीरों से मुक्त होते हैं। कर्मबद्ध अवस्था में पड़ा जीव संसारी है और दुःखी है, पर कर्म जंजीरें टूटते ही जन्म-मरण की परम्परा हमेशा के लिए समाप्त हो जाती है। तीर्थंकर शाश्वत स्थान सिद्धशिला को प्राप्त करते हैं। यह तीर्थंकर संसार के जीवों के लिए आदर्श के रूप में पूजे जाते हैं। जैनधर्म में भक्ति का मूल उपदेश-प्रभु के

गुणों का चिन्तवन करना है। आचार्य महाप्रज्ञ की भाषा में-

हर तीर्थंकर, तीर्थंकर बनने से पहले अपने से पहले हुए तीर्थंकरों की भक्ति करता है। हर सिद्ध, सिद्धत्व से पहले सिद्धों की भक्ति करता है। यह गुण सामान्य अरिहंत केवलियों को तीर्थंकरों से भिन्न करते हैं।

तीर्थंकर भगवान अठारह दोषरहित होते हैं-

(१) दानान्तराय, (२) लाभान्तराय, (३) वीर्यान्तराय, (४) भोगान्तराय, (५) उपभोगान्तराय, (६) हास्य, (७) रति, (८) अरति, (९) सप्तभयमुक्त, (१०) जुगुप्सा (घृणा), (११) शोक, (१२) काम, (१३) मिथ्यात्व, (१४) अज्ञान, (१५) निद्रा, (१६) अविरति, (१७) राग, (१८) द्वेष।

भिन्न भिन्न क्षेत्रों में तीर्थंकरों की संख्या

साध्वी उमेश जी शास्त्री ने तीर्थंकर पुस्तक में तीर्थंकरों की उत्पत्ति के बारे में इस प्रकार लिखा है (पृष्ठ १०-११)-

भरतक्षेत्रापेक्षा से तीर्थंकर सदैव २४ ही होते हैं। तीसरे आरे में प्रथम तीर्थंकर और चौथे आरे में 23 तीर्थंकर होते हैं। यह अटल नियम है। भरतक्षेत्र की अपेक्षा २४ की संख्या शाश्वत है। महाविदेह क्षेत्र में विहरमान के रूप में २० तीर्थंकर सदैव विद्यमान रहते हैं। वहां हमेशा चौथा आरा वर्तता है। १५ कर्मभूमियों में तीर्थंकर भगवान होते हैं। कर्मभूमियों की अपेक्षा एक समय में जघन्य २० तीर्थंकर और उत्कृष्ट १६० या १७० तीर्थंकर हो सकते हैं। जैसे पांच महाविदेह क्षेत्र और हर एक क्षेत्र में ४-४ तीर्थंकर पाए जा सकते हैं। योग ५×४ = २० तीर्थंकर हुए। उत्कृष्ट १६०। जैसे पांच विदेह क्षेत्रों में ३२-३२ विजय हैं। ३२×५ =१६० विजयों में एक-एक तीर्थंकर होते हैं इस प्रकार १६० तीर्थंकर हुए। पांच भरत पांच ऐरवत इन दस क्षेत्रों में भी १० तीर्थंकर हुए तो इस अपेक्षा से १७० तीर्थंकर होते हैं।

श्री जम्बूद्वीप गणितशास्त्र में किसी अपेक्षा से जघन्य ४ तीर्थंकर और उत्कृष्ट ३४ तीर्थंकर कहे हैं जैसे ३२ विजयों में एक एक यों ३२ हुए और भरत-ऐरवत में एक-एक यों ३४ तीर्थंकर बतलाए हैं।

अवतारवाद व उत्तारवाद

तीर्थंकर किसी देवी-देवता के अवतार नहीं होते। वे तो सामान्य मनुष्य होते हैं, जो पूर्वजन्मों की विशिष्ट साधना-आराधना द्वारा तीर्थंकर नामकर्म गोत्र का बंध करते हैं। तीर्थंकर न किसी को शाप देते हैं न आशीर्वाद। यह उनकी सदेह वीतराग अवस्था की संस्कृति है।

इसके विपरीत वैदिक परम्परा अवतारवाद में विश्वास रखती है। गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है-

ईश्वर अज,अनन्त और परमात्मा होने पर भी अपनी अनन्तता को अपनी माया-शक्ति से संकुचित कर शरीर धारण करता है। अवतारवाद का सीधा अर्थ है- ईश्वर का मानव देह में धरती पर प्रकट होना।

ईश्वर के अवतार लेने का एक मात्र उद्देश्य सृष्टि के चारों ओर जो अधर्म का अंधकार छाया है, उसे नष्ट कर धर्म का प्रकाश, साधुओं का परित्राण, दुष्टों का नाश और धर्म की स्थापना करना है। वैदिक धर्म में कोई भी आत्मा परमात्मा का रूप कभी भी नहीं ले सकती। इसके विपरीत जैनधर्म में साधना का उद्देश्य है राग-द्वेष को छेदन कर १८ पापों से मुक्त हो आत्मा को जन्म-जरा-मरण के दुःखों से मुक्त करना और अरिहंत अवस्था प्राप्त कर केवलज्ञान के धारक बनना।

जैनधर्म की मान्यता के अनुसार मात्र अढ़ाई द्वीप में १५ कर्मभूमियां हैं। उनमें एक समय में १७०

क्षेत्र हैं, जहां तीर्थंकर उत्पन्न होते हैं। एक समय में एक क्षेत्र में सर्वज्ञ अनेक हो सकते हैं, पर एक समय में एक क्षेत्र में तीर्थंकर एक ही होता है। एक समय में अधिक से अधिक १७० तीर्थंकर उत्पन्न होते हैं, ज्यादा नहीं।

तीर्थंकर व सामान्य केवली में मुख्य अन्तर विशिष्ट घटनाओं का है। तीर्थंकर के समान सामान्य केवलियों पर कोई भी घटना घटित नहीं होती। मुक्त अवस्था में सभी जीव सिद्ध बन जाते हैं। आत्मा अजर-अमर हो जाती है। अनन्त काल के लिए उन्हें अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त शक्ति में लीन हो जाना होता है। वहां कर्मबंध और कर्मवंध के कारणों का सर्वधा अभाव होने से जीव पुनः संसार में नहीं आता। जैनधर्म का तीर्थंकर ईश्वरीय अवतार नहीं है। मूलतः जैनधर्म अवतारवाद को नहीं मानता। यहां शुभ कर्म से प्राप्त तीर्थंकर गोत्र है इसके पीछे कर्म सिद्धांत है।

वैदिक अवतारों की मान्यता

जैनधर्म के तीर्थंकरों की मान्यता का प्रभाव दूसरे धर्मों पर भी पड़ा है। वैदिक धर्म के पुराणों में अवतारवाद के विभिन्न देवताओं के अवतार माने जाते हैं। भागवत पुराणों में अवतारों के तीन विवरण मिलते हैं जो अन्य पुराणों से प्राप्त होने वाले दशावतार परम्परा से पृथक हैं -

वैदिक परम्परा में १०,१६,२२,२४ प्रमुख अवतारों का वर्णन मिलता है। भागवत में कहीं भगवान के असंख्य अवतार माने गए हैं। दशम स्कंध में १२ अवतारों की बात कही गई है। उक्त सूची में आगे चलकर पांच रात्र वासुदेव के ही पर्याय विभवों की संख्या २४ से बढ़कर ३९ तक हो गई है।

लघु भागवतामृत में यह संख्या २५ तथा सात्वत तंत्र में ४१ से अधिक हो गई है। इन चौबीस अवतारों में मत्स्य, वराह, कूर्म आदि तो अवतार पशु के हैं। हंस पक्षी है। कुछ अवतार पशु व मानव दोनों के मिश्रित रूप हैं जैसे- नृसिंह व हयग्रीव।

वैदिक परम्परा में जैन परम्परा की तरह अवतार की व्यवस्था का वर्णन नहीं मिलता। इन २४ अवतारों की सूची में भगवान ऋषभदेव व अंतिम अवतार में महात्मा बुद्ध को शामिल किया गया है।

भदन्त बौद्ध भिक्षु का मत है कि ''ईसा पूर्व प्रथम या द्वितीय शताब्दी में जैविक बुद्ध का उल्लेख हो चुका था।'' बौद्धों में भी वैदिक धर्म की तरह असंख्य अवतारों की कल्पना की गई है। पर आगे चलकर यह संख्या ५,७,२४ और ३६ तक सीमित हो गई।

जैनधर्म में २४ तीर्थंकरों की मान्यता एक है चाहे श्वेताम्बर हो या दिगम्बर इनमें कोई अंतर नहीं।

- महावीरः एक अनुशीलन पृ. २०-२१ (आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि के आधार पर)

●●

---

१. दिगम्बर परम्परा सोलह स्वप्न मानती है-
(१) गज, (२) वृषभ, (३) सिंह, (४) लक्ष्मी, (५) माला, (६) शशि, (७) सूर्य, (८) कुम्भद्धिक, (९) मेषयुगल, (१०) सागर, (११) सरोवर, (१२) सिंहासन, (१३) देव विमान, (१४) भवन, (१५) रत्नराशि (१६) निर्धूम अग्नि।

आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव

जैनधर्म में चौबीस तीर्थंकरों की मान्यता बहुत प्राचीन है। हम इस अध्ययन में ऐतिहासिक तीर्थंकरों का वर्णन करेंगे। हमने इस पुस्तक के प्रथम अध्ययन में लिखा था कि प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव का वर्णन भारतीय दर्शन परम्परा में भरा पड़ा है। समस्त वैदिक ग्रंथ, बौद्ध ग्रंथ, सिक्खों का दशम ग्रंथ इसके प्रमाण हैं।

ऋषभदेव जैन मान्यता के अनुसार अवसर्पिणी काल के तृतीय आरे के उपसंहार काल में उत्पन्न हुए। शेष तीर्थंकरों और प्रथम तीर्थंकरों में बहुत लम्बा अंतराल है।

वैदिक दृष्टि से ऋषभदेव प्रथम सतयुग के अंत में हुए और राम-कृष्ण के अवतारों से पूर्व हुए। वह आत्म-विद्या के प्रथम पुरस्कर्त्ता थे। कल्पसूत्र में उन्हें प्रथम राजा, प्रथम केवली, प्रथम तीर्थंकर और प्रथम धर्मचक्रवर्ती माना गया है। ब्रह्माण्डपुराण के अनुसार वह दस प्रकार के धर्म के प्रवर्तक थे।[1]

श्रीमद्भागवत में जैनधर्म की भांति भगवान ऋषभदेव का वर्णन आया है। श्रीमद्भागवत में बताया है- "वासुदेव ने आठवां अवतार नाभि और मरुदेवी के यहां धारण किया। वे ऋषभ रूप में उत्पन्न हुए। उन्होंने सब आश्रमों को धर्म मार्ग दिखलाया।

उनके सौ पुत्र थे। प्रथम पुत्र भरत के नाम [redacted]